International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157; Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 2; Issue 3; May 2017; Page No. 121-125

अंतराष्ट्रीय व्यापार का ऐतिहासिक संगमन : जौलजीवी मेला

डॉ0 भगवन्त कुमार पाण्डेय

Research Scholar, Govt. PG College Ranikhet, Kumaun University Nainital, Uttarakhand, India

प्रस्तावना : सामान्य परिचय

हिमालय की पिथौरागढ़ के मध्यवर्ती ऊँची हिम श्रृंगों की पर्वतमाला जो गढ़वाल की सीमा पर स्थित नन्दादेवी (7816 मी0) से दक्षिण पूर्व के ओर नन्दाकोट (6861 मी0) होती हुई पंचचूली पर्वतमालाओं की ओर बढ़ती हुई चिफलाधार पर नीची होती हुई 3900 मी0 तक पहुँचती है, वह धारचूला के दक्षिण में उस स्थल पर समाप्त होती है, जहाँ गोरी गंगा शारदा (काली) में मिलती है। इसी स्थान पर 'जौलजीवी' नामक स्थान है, जो प्राचीनकाल से ही एक भोटिया पड़ाव था।[1] यह स्थान पिथौरागढ़–धारचूला मोटरमार्ग पर पिथौरागढ़ से 68 कि0मी0 की दूरी पर स्थित है।

मेले का ऐतिहासिक परिचय

जौलजीवी में जवाहर जयन्ती 14 नवम्बर से 10 दिन तक एक बड़ा औद्योगिक मेला लगता है।[2] राहुल सांकृत्यायन के अनुसार सन् 1914 में मार्गशीष की प्रथम तिथि से यह मेला लगने लगा है, जहाँ 15000 से अधिक लोग जमा होते थे।[3] अस्कोट के तालुक्केदार गजेन्द्र पाल के समय से यहाँ मार्गशीष की संक्रान्ति से एक सप्ताह का मेला लगना शुरू हुआ। मोटर–पुल के निर्माण से पहले अस्कोट के रजवार गोरी नदी में मेला पुल भी बनवाते थे।[4] जनश्रुतियों के अनुसार अस्कोट रजवार ने वार–पार के भोटिया मिलन हेतु यह मेला लगवाया जो आजादी के बाद नेहरू के मरणोपरान्त उनके जन्म दिवस 14 नवम्बर से शुरू होने लगा है। लगभग 70–80 साल पहले रजवार सहाब द्वारा जनहित में मेला लगाने का विचार किया गया ताकि यहाँ के लोगों का घी, मोस्टा, सूपा, दन, चुटका का व्यापार हो सके। उन्होंने दस साल तक मिठाई वालों को बुलाया और मुफ्त में जलेबी बनाकर खिलाना शुरू किया तब से मेला लगाना शुरू हुआ। उल्लेखनीय है कि गजेन्द्र बहादुर पाल ने अपने पिता पुष्करपाल की मृत्यु (1903) के बाद अस्कोट की राजगद्दी (1903 से 1928 तक) संभाली तथा उन्हें द्वितीय श्रेणी मजिस्ट्रेट का दर्जा (1904–1912) भी प्राप्त था।

वर्तमान समय में मेले का उद्घाटन प्रशासनिक नियंत्रण में 14 नवम्बर को होता है।

मेले का व्यापारिक महत्व

जौलजीवी, काली व गोरी नदियों का संगम ही नहीं वरन् भारत, नेपाल और तिब्बत की तीन सांस्कृतिक व्यापारिक धाराओं का मिलन स्थल है। काली–गोरी का संगम जौलजीवी के व्यापारिक महत्व से जितना विख्यात हुआ है उतना कोई दूसरा संगम नहीं। दो नदियों के संगमन से अधिक महत्व तीन देशों के व्यापारिक, सांस्कृतिक संगमन का था। तीन देशों की अनेकों जातियाँ, धर्म, मत–मतान्तरों की झांकियाँ यहाँ देखी जा सकती थी फिर भी भोटिया सांस्कृतिक उपादानों का योगदान इसमें सर्वाधिक था। कुमाऊँ की सांस्कृतिक झलक यदि बागेश्वर, स्याल्दे–बिखौती में थी तो भोटिया व्यापारिक सांस्कृतिक जीवन की सजधज जौलजीवी में थी।[5] प्राचीन समय में कुमाऊँ क्षेत्र स्थायी बाजारों का प्रादुर्भाव नहीं था। विभिन्न पेशेवर वर्ग परस्पर वस्तु–विनियम प्रणाली द्वारा ही अपनी आवश्यकता आपूर्ति करते थे। दैनिक उपभोग व उपयोग की आवश्यकता पूर्ति के लिए स्थायी बाजारों के अभाव के कारण ही मेलों का स्वरूप वृहद रूप से व्यापारिक रहा है, जौलजीवी मेला भी इसका अपवाद नहीं।

जौलजीवी मेला पूर्व से ही एक 'विख्यात मंडी' [6] के रूप में प्रसिद्ध रहा है। मेले में मण्डी का स्वरूप आज भी दृष्टिगत होता है, जबकि आज जगह–जगह स्थायी बाजार विकसित हो चुके हैं और सड़क यातायात की भी सुविधा समुचित हो चुकी है। यद्यपि आज के इस विकसित वैज्ञानिक परिवेश में आम जनमानस की आवश्यकताओं मे बदलाव आया है और मेले से कई परम्परागत व्यापारिक वस्तुएं विलुप्त हो चुकी हैं तथापि मेले में आज भी अनेक वस्तुओं की निरन्तरता सतत् रूप से कायम है जो मेले की व्यापारिक ऐतिहासिकता को आज भी प्रतिविम्बित करते हैं।

इस मेले में शौका, कुमाऊँ, नेपाली व मैदानी क्षेत्रों के हजारों व्यापारी आते हैं।[7] व्यापारीगण अपने–अपने ढंग का व्यापार करते हैं। मेले की व्यापारिक महत्ता को हम बिन्दुवार निम्नवत आंकलित कर सकते हैं।

1. तिब्बती, नेपाली, शौका एवं सीमान्तवासी व्यापारियों का योगदान–

जौलजीवी मेले में तिब्बती एवं सीमान्तवासी शौका व्यापारियों द्वारा एकत्रित एवं आयातित वस्तुओं की भरमार रहती थी। यह क्रम आज भी निरंतरता बनाये हुए है।

तिब्बत सीमा बहुत अधिक दूर नहीं होने के कारण तकलाकोट के तिब्बती व्यापारी भी इस मेले आ पहुँचते थे।[8] जौलजीवी एक समय नेपाली घी, शहद, वनस्पति, गुड़, तिब्बती टांघन घोड़ों, भोटिया कुत्तों, शंकों, ऊन तथा ऊनी वस्त्रों की विख्यात मंडी थी।[9] अंग्रेजों द्वारा भारत–तिब्बत व्यापार को बढ़ावा देने के प्रयास किये गये। सन् 1914 में शिमला में बिट्रेन, तिब्बत, चीन के बीच एक समझौता हुआ जिसके द्वारा भारत के भोटान्तिक व्यापारी तिब्बत की मंडियों में मकान के लिए भूमि 10 वर्ष के लिए पट्टे पर ले सकते थे। सन् 1950 में चीन ने तिब्बत का अधिग्रहण कर लिया इस पर भी व्यापार पूर्ववत चलता रहा। 1962 के भारत–चीन युद्ध के पश्चात् भारत–तिब्बत व्यापार बंद हो गया।[10] तिब्बत व्यापार–संधि के समाप्त होने से पहले जौलजीवी का मेला शौका व्यापारियों द्वारा आयातित ऊन और ऊनी माल के लिए विख्यात था।[11] तिब्बत से आयात किया हुआ व्यापारिक माल नवम्बर के मध्य में लगने वाले व्यापारिक मेले में बेचा जाता था।[12] इसके अतिरिक्त भोटिया/जुमली पहाड़ी, भेड़–बकरियों का भी यहाँ बहुत बड़ा व्यापार होता था।[13]

इस मेले के संदर्भ में राहुल सांकृत्यायन ने भी लिखा है कि तिब्बत, भोटान्त और जुमला के प्रमुख पण्य थे भोटिया टांधन। इन घोड़ों के बाद दूसरा पण्य था तिब्बती और भोटान्तिक ऊन, ऊनी कपड़े तथा इसके अतिरिक्त नेपाल से अनाज, घी और फल मुख्यतः आते थे। इस मेले के बाद भोटान्तिक व्यापारी भाबर के बाजारों की ओर चले जाते थे।[14]

पहले व्यांस, चौदांस और दारमा के लोग जाड़ों में यहीं रहते थे। अपने–अपने याक, झुप्पुओं, खच्चरों और भेड़–बकरियों के काफिले के साथ कार्तिक मास के अन्त तक यहाँ पहुँच जाते थे। यहाँ इनके शीतकालीन घर थे। घर तो अभी भी हैं। मार्च (चैत्र) के आते–आते इन घरों में ताले पड़ जाते थे और उनकी प्रव्रजन (Migration) यात्रा अपने सीमांतीय गांवों की ओर शुरू हो जाती थी, उनका यह आवागमन भौगोलिक कारणों से जुड़ा हुआ था।[15] इस प्रकार पूर्व से ही शौका व्यापारी प्रतिवर्ष गर्मियों के मौसम में अपने उच्च–हिमालयी आवासीय क्षेत्रों की ओर जाते थे और मेले से एकत्र की गयी वस्तुओं को तिब्बत की मंडियों तक पहुँचाते थे और पुनः अगले वर्ष शीतकाल प्रारम्भ होने तक यहाँ पहुँच जाते थे और तिब्बत से आयातित माल तथा स्वयं द्वारा निर्मित ऊनी वस्तुऐं एवं ऊन लेकर जौलजीवी मेले में पहुँचते थे। सन् 1962 के भारत –चीन युद्ध के पश्चात् भारत–तिब्बत व्यापार बंद हो गया तथा जुलाई 1992 में भारत तथा चीन के मध्य एक समझौते के पश्चात् लिपूलेख दर्रे (16780 फीट) द्वारा प्राचीन भारत–तिब्बत व्यापार का प्रारम्भ करने का निश्चय किया गया। इस व्यापार के लिए गुंजी तथा तकलाकोट के दो व्यापारिक केन्द्र निश्चित किये गये।[16] वर्तमान समय में भी कई व्यापारी तिब्बत की मंडियों से ऊन खरीद कर लाते हैं। तकलाकोट की मण्डी से पुश्तैनी व्यापार करने वाले एक व्यवसायी के अनुसार "तिब्बत की तकलाकोट मण्डी में तिब्बत के डोकपा, लुम्बा क्षेत्र और ल्हासा से तिब्बती व्यापारी ऊन लाते हैं और वे स्वयं तिब्बती व्यापारियों से कच्चा माल (ऊन) खरीदते हैं, उसे शोधित करने तथा बुनने के बाद जौलजीवी मेले में बेचते हैं, तकलाकोट की मण्डी पहले 'थंकर' में लगती थी अब नयी मंडी सन् 2003 से 'लीलींगकांग' में लगती है। यह तिब्बती ऊन दो प्रकार का होता है जिसमें 'फस्ट ग्रेड' के ऊन को लैंना (पश्म) कहते हैं जिससे कीमती शाल, मौफलर, टोपी तथा दस्ताने बनाये जाते हैं तथा 'सेकेण्ड ग्रेड' के ऊन से थुलमा, चुटका तथा पंखी इत्यादि बनायी जाती हैं। ऊन घोड़े तथा खच्चरों से लादकर लाते हैं"।

मेले में पारंपरिक तौर से व्यवसाय करते आ रहे एक वरिष्ठ व्यवसायी गुंजी निवासी श्री गुंजन सिंह गुन्जयाल उम्र 75 वर्ष के अनुसार जब तराई–भाबर से सम्पर्क नहीं था। यातायात का साधन नहीं था उन दिनों भोटिया वर्ग तिब्बत से नमक, सोहागा, ऊन, जड़ी–बूटियाँ, घरेलू उपयोगी चीजें बकरी की पीठ पर दोनों तरफ लटके थैलों में लादकर लाते थे, इन थैलों को 'करवच्छ/कवर्च' कहा जाता है। मेले के अतिरिक्त यह सामान भारत व नेपाल के गाँव–गाँवों तक भी पैदल बकरी की सहायता से पहुँचाया जाता था। अब नमक और सुहागा का व्यापार लगभग छूट गया है।

प्राचीन समय में रंग जाति अपने ऊनी कपड़ों, चुटका, दन, कम्बल, पंखी, बनियान, टोपी इत्यादि बनाकर गुजर–बसर करते थे। उन दिनों तिब्बत से आने वाला ऊन, सुहागा, घोड़ा, खच्चर, नमक, त्यंकर (तिब्बती भेड़), रब्बू (बकरी), चुफ्फु (बकरी के बच्चे/पूजा–पाठ में प्रयोग के लिए) स्थानीय लोग खरीदते थे। मांस के लिए भी बकरियाँ खरीदी जाती थी। तिब्बत का सुहागा रामनगर में शोधित किया जाता था या फिर कलकत्ता में शोधित होता था। तिब्बती नमक से कुमाऊँ और नेपाल की आपूर्ति होती थी। पहले गढ़वाल के भोटिया–तोलछा, मारछा वर्ग के लोग भी जौलजीवी मेले में नमक बेचते थे। जौलजीवी मेले तथा आस–पास के गांवों से एकत्र अनाज की तिब्बत की तकलाकोट मण्डी में तिब्बती वस्तुओं के साथ अदला–बदली होती थी। सन् 1962 तक वस्तु–विनिमय काफी प्रचलित था। एक बर्तन चावल के बदले एक बर्तन सुहागा लिया जाता था, जबकि एक बर्तन नमक के बदले 10–16 बर्तन अनाज मिलता था। इस प्रकार स्पष्ट है कि जौलजीवी मेले में भोटान्तिक शौका व्यापारियों की प्राचीन समय से ही काफी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। ये व्यापारी ही मुख्यतः मेले की व्यवसायिक श्रृंखला को अन्तराष्ट्रीय वातावरण एवं पहचान प्रदान करते आये हैं और कृषि विहीन उच्च हिमालयी तिब्बती क्षेत्र के व्यापारियों और पशुचारकों की रसद–आपूर्ति की भी महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में ऐतिहासिक रूप से मान्य रहे हैं।

मेले के सम्बन्ध में जोहार, व्यांस, चौंदास और दारमा क्षेत्र में जब कोई व्यक्ति अपने कार्यों को जल्दबाजी में करता है तो आम बात–व्यवहार की भाषा में कहा जाता है कि – 'क्या मेला छूट रहा है'। अर्थात मेले में पहुँचने के लिए यहाँ के लोग अपने कार्यों को फटाफट निपटाते हैं ताकि मेला न छूटने पाय, जो मेले में सम्मिलित होने के प्रति उनके लगाव को दर्शाता है।

आज भी मेले में 'भोटिया व्यापारी तिब्बत से आयातित ऊन तथा अपने द्वारा तैयार ऊनी वस्त्रों, भेड़–बकरियों, उच्च हिमालयी क्षेत्र से एकत्र की गयी जड़ी–बूटियों इत्यादि को लेकर इस मेले में पहुँचते हैं। यद्यपि आज मेले से खाने का नमक, चंवर गाय की पूंछ, भालू का पित्त, शेर की खाल, कस्तूरी की नाभि इत्यादि कई वस्तुएं लुप्तप्राय हो चुकी हैं फिर भी सुहागा मेले में भोटिया व्यापारियों के पास आज भी उपलब्ध रहता है, जिसे काफी कम मात्रा में भोटिया व्यापारिक पण्डालों में मेले के दौरान देखा जा सकता है। मेले में तिब्बती, शौका एवं नेपाल के व्यापारियों द्वारा लाये जाने वाले प्राचीन उत्पादों को वर्तमान समय के सापेक्ष निम्नवत सारणीवद्ध किया जा सकता है–

तालिका 1

प्राचीन आयातित / उत्पादित वस्तुएं	वर्तमान आयातित/ उत्पादित वस्तुएं	प्राचीन आयातित / उत्पादित वस्तुएं	वर्तमान आयाति/ उत्पादित वस्तुएं
थुलमा	✓	जड़ी–बूटियाँ	✓
पंखी	✓	शाल	✓
पश्मिना	✓	मौफलर	✓
चुटका	✓	स्वर्ण चूर्ण	X
कोट–पेंट हाथ का बुना कपड़ा	X	घी	✓
बनियान	✓	शहद	X
भाग्टू	✓	स्थानीय गुड़	X
जम्बू	✓	भोटिया कुत्ते	✓
तिब्बती / जुमली घोड़े	✓		दस्ताने
भालू का पित्त	X		थर्मस
कस्तूरी नाभि	X		आधुनिक डिजायनदार आसन
खान का नमक	X		जैकेट

शेर की खाल	X		हाइनेक
बकरी की खाल	✓		याक के खाल के साबर जूते
चंवर गाय की पूंछ	X		विभिन्न प्रकार के पर्स
सेहागा	✓		चयनीज बैग (झोले)
भेड़–बकरियाँ	✓		चायनीज टार्च
			चीनी कम्बल
			कोरिया के कम्बल
			लुधियाना के शाल

2. मेले में कुमाऊँनी व्यापारियों का योगदान–

विशिष्ट भौगोलिक परिवेश लिए हुए जौलजीवी, जोहार, दारमा, व्यांस, नेपाल के हुमला–जुमला और सोर (वर्तमान पिथौरागढ़) तथा सीरा (वर्तमान डीडीहाट) के लगभग मध्य में स्थित होने के कारण सड़क–यातायात एवं स्थायी स्थानीय बाजारों के विकास से पूर्व के समय में इस सम्पूर्ण क्षेत्र के लिए एकमात्र मुख्य व्यापारिक गतिविधियों का केन्द्र रहा है। जहाँ कुमाऊँनी काश्तकार, सामान्य जनता, अन्य व्यापारी वर्ग तथा भोटान्तिक व्यापारी वस्तु–विनिमय के अलावा नगदी के रूप में आवश्यकतानुसार अपनी उपयोग, उपभोग एवं व्यापार की वस्तुएं जुटाते थे। व्यापारियों के आपसी व्यापार के अलावा मेले में सम्मिलित होने वाले आस–पास के कुमाऊँनी एवं नेपाली लोग ही सक्रिय उपभोक्ता रहे हैं। इन उपभोक्ताओं की आवश्यकता आपूर्ति करने तथा मेले के व्यापारिक स्वरूप को स्थानीय आयाम प्रदान करने में कुमाऊँ क्षेत्र के व्यापारियों की भूमिका भी ऐतिहासिक रही है जैसे–

- **कमलेख (लधौना), लोहाघाट (चम्पावत) के लौह दस्तकार :–** बागेश्वर मेले की भांति ये लौह–बर्तन निर्माता पुस्तैनी रूप से इस मेले में भी अपने आफरों (लोहा गलाने की भट्टी) में पीट–पीट कर बनाये गये लौह निर्मित कई गृहपयोगी, बर्तन एवं कृषिपयोगी यन्त्रों को मेले में पहुँचाते हैं। इन व्यवसायियों के अनुसार कुछ दशक पूर्व तक मेले में स्टॉल लगाने के लिए खुली जगह मिल जाती थी परन्तु अब बाजार विकसित हो गया है इसलिए किराये पर दुकान लेनी पड़ जाती है। वर्तमान समय में इनके द्वारा मेले में लायी जानी वाली सामग्रियों में – कड़ाही, चासनी, भदेला, तवा, पलटा, करछी, दराती, बड़ी दराती, कशी, बड़ी चासनी, फाला, झांझन तथा अन्य गृहपयोगी लौह बर्तन प्रमुख हैं।
- **अनाज एवं साद्य सामग्रीः–** शौका व्यापारी स्थानीय लोगों से मुख्यतः अनाज खरीदते थे, जिसे वह स्वयं के उपयोग व उपभोग के अलावा तिब्बत तक पहुंचाते थे। राहुल सांकृत्यायन ने भी सीरा व अस्कोट के लोगों द्वारा अनाज व दूसरी खाद्य सामग्री मेले में पहुँचाने का वर्णन किया है।[17] उल्लेखनीय है कि सोर, सीरा और अस्कोट परगने प्राचीन समय से ही हरे–भरे, लम्बे–चौड़े मैदानों के लिए प्रसिद्ध रहे हैं इसीलिए चंदशासन काल में राजा बालों कल्याण चंद की रानी (जो कि डोटी के रैका राजा हरिमल्ल की बहिन थी) द्वारा सीरा दहेज में माँगने पर मल्ल राजा ने कहा, "सीरा का राज्य मेरा सिर है, उसे कदापि न दूँगा, पर सोर दहेज में दे दूँगा"।[18] जो क्षेत्र की धन–धान्य सम्पन्नता को इंगित करता है और जौलजीवी मेले में इस क्षेत्र से अनाज व खाद्य सामग्री के स्रोतरूप की भी पुष्टि करता है। उल्लेखनीय है कि सोर में शहद बहुत होता है, केला भी यहाँ का मीठा होता है, गल्ला व घी भी अन्य जगहों से सस्ता बिकता है, घी यहाँ से बहार को भी जाता था।[19] काली के किनारे की भूमि खूब उपजाऊ है। घी, शहद, केला, बासमती, आम और अमरूद यहाँ खूब होते हैं।[20]

आज भी मेले में दूध–दही, घी इत्यादि पदार्थ स्थानीय गावों से आता है। स्थानीय बाजार में आस–पास के गांवों से दूध, दही, घी वर्षभर आता है परन्तु मेले के समय खपत बढ़ जाने से इसकी मांग बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त हिमालयी क्षेत्र की दुर्लभ जड़ी–बूटियाँ, वनस्पतियों व वनोपजों का सेवन करने वाले पशुओं (गाय–भैसों) के दुग्ध से बनाया गया, कनार–बरम क्षेत्र का दानेदार घी आज भी अपनी विशुद्ध गुणवत्ता के लिए प्रसिद्ध है, जो मेले के अवसर पर स्थानीय बाजार के विक्रेताओं के पास उपलब्ध रहता है। जिसकी विशिष्ट सुगन्ध हिमालयी क्षेत्र की प्राकृतिक वानस्पतिक उपलब्धता का ही निष्कर्षण है।

- **राजी जनजातियों (वनरौत) का योगदान :–** पिथौरागढ़ जनपद की अरण्यवासी जनजाति जिसे राजी, वनराज, वनरावत, वनखनियां रावत या फिर राजकिरात नामों से पुकारा जाता है, लकड़ी के बर्तन बनाने में दक्ष थे। ये अदृश्य व्यापारी रात्रि में मकानों के बाहर चौंतर में स्वयं द्वारा बनाये गये लकड़ी के बर्तन रख देते थे और जंगल को लौट जाते थे। अगले दिन खरीददार उन्हीं बर्तनों को गेहूँ, मडुवा, झुंगर या कौंणी से भरकर चबूतरों में रख देते। अजनबी पुनः अनाज उलटकर खाली बर्तन यथावत रख देते। इन बर्तनों का उपयोग दूध, घी रखने के लिए होता था।[21] इस प्रकार निकटवर्ती ग्रामों के साथ उन लोगों का अदृश्य व्यापार होता था जो कि दो–तीन दशक पूर्व तक भी प्रचलन में था। इस संदर्भ में डॉ0 प्रयाग जोशी ने भी लिखा है कि कनतोली के वनराजियों से उनके शिल्पी संस्कारों का पूरा परिचय मिल जाता है। बिण्डा, ठेकी, पाली, पारा आदि काष्ठ बर्तनों के निर्माण का उन्हें अच्छा हुनर है। खेती के औजार–हल, जुआ, मै, दनेली आदि के साथ पनचक्की के पुरचे, फितड़े, पनेला, बूढ़ाकाठ और पानी से चलने वाली खराद की मशीन का निर्माण वे अच्छा करते हैं। डांडों–कांठों को खोपकर गूल निकालना, लकड़ी चिरना उन्हें बहुत अच्छा आता है। सड़क निर्माण और चिरान पर आधारित रोजगारों द्वारा वे आधुनिक व्यवसायिक दुनिया के सम्पर्क में आ गये है। राजगिरी और बढ़ईगिरी के काम की तलाश में अपनी बस्तियों से काफी दूर जाने लगे हैं।[22] ये अरण्यवासी व्यापारी अपने काष्ठ निर्मित धिनाली रखने के बर्तन (ठेकी, हड़पी, विण्डा आदि) तथा कृषिपयोगी काष्ठ उपकरणों को जौलजीवी मेले में भी लाते थे। इस तथ्य की पुष्टि डॉ प्रयाग जोशी को प्राप्त धन सिंह बनरौत के नाम पिथौरागढ़ के प्रसिद्ध वकील रामदत्त चिलकोटी द्वारा प्रेषित पत्र से की जा सकती है।[23] पत्र इस प्रकार है–

दिनांक 16–10–1947
पिथौरागढ़
धनदा जय हिन्द,
मैं जौलजीवी मेले में आऊँगा, तुम मेरे लिए एक विण्डा करीब 10 शेर जाने वाला सानन का और दो ठेकी 3–3 शेर जाने वाली यह भी सानन की तैयार रखना और जौलजीवी मेरे डेरे में लेते आना मुनासिब कीमत दी जायेगी।
आपका – रामदत्त चिलकोटी
वकील, पिथौरागढ़

व्यक्तिगत रूप से पेड़ काटने की अनुमति न मिलने के कारण इनका यह हस्तकौशल ठप्प पड़ गया है। लकड़ी के बर्तन चलथी नामक स्थान पर गैरराजियों द्वारा पानी से चलने वाली तक्षिणी के द्वारा बड़े पैमाने पर बनाये जाते हैं जो मुख्यतः पिथौरागढ़ बाजार में बिकते है। कुछ राजी भी अपने उपयोग के लिये इन बर्तनों को खरीदने लगे हैं।[24] आज मेले में वनराजियों के काष्ठ उपकरण लुप्तप्राय अवस्था में हैं।

- इसके अतिरिक्त गंगोलीहाट के आस पास के क्षेत्र से भांग व सिन्ना से निर्मित बोरे और कुथले भी दो–तीन दशक पूर्व तक आते थे जिनकी पहले काफी माँग रहती थी जिनका उपयोग मुख्यतः अनाज भण्डारण व अनाज ले जाने में होता था।
- **गोरीछाल क्षेत्र की रिंगाल निर्मित वस्तुएँ :–** जौलजीवी से मुनस्यारी के ओर जाने वाले मार्ग में जौलजीवी से लेकर मदकोट तक, गौरी गंगा की घाटी 'गोरीछाल' के नाम से जानी जाती है। इस क्षेत्र के पर्वतीय भागों में रिंगाल काफी मात्रा में पाया जाता है। स्थानीय बुनकर रिंगाल की वस्तुएँ लेकर जौलजीवी मेले में पहुँचते हैं। मेले में रिंगाल की उपलब्ध वस्तुओं में डोका, सूपा, टोकरी, मोस्टे, कण्डी, बाल्टी, डलिया आदि प्रमुख हैं।

3. मैदान क्षेत्र के व्यवसायी

जौलजीवी मेले में पीतल के बर्तन मुरादाबाद के व्यापारियों द्वारा लाये जाते थे जो मेले में घी तथा ऊन एवं ऊनी वस्त्रों से अपने उत्पादों का विनिमय करते थे। इसके अतिरिक्त चुड़ी, चरेऊ, पीठीया, जूते, श्रृंगार सामग्री भी मैदानी क्षेत्र के लोग लाते रहे है। मिठाई निर्माता व्यापारी भी हाथरस से आते थे जो आज भी मेले में व्यवसाय करते दिखायी देते हैं। मैदानी क्षेत्र के 'लाल इमली धारीवाल' मिल के व्यापारी ऊन खरीदने इस क्षेत्र में आते थे और ऊन काफी मात्रा में खरीदते थे। अब यह क्षेत्र यातायात से जुड़ चुका है और स्थानीय बाजार विकसित होने से मेले में मुरादाबाद के बर्तन व्यवसायी मेले में नहीं आते हैं। लेकिन पिछले 8–10 वर्षों से बाजपुर के बर्तन व्यवसायी सिल्वर और स्टील के बर्तन, बाल्टी, गिलास, थाली, कटोरे, चम्मच, डेग आदि लेकर मेले में व्यवसाय करने आते रहे हैं। इसके अतिरिक्त वे देवीधुरा, काशीपुर चैतीमेला, जागेश्वर श्रावणी मेला, नंदा देवी मेला अल्मोड़ा में भी व्यापार करते है। आज भी ताम्र, स्टील, पीतल, लोहा, ऐल्यमीनियम के बर्तनों की खासी माँग मेले में स्पष्ट दिखाई देती है।

4. मेले में आधुनिक लघु एवं कुटीर उद्योगों का योगदान

वर्तमान समय में मेले में 'कुमाऊँ अनुसूचित जनजाति विकास निगम, नैनीताल' का भी स्टॉल लगता है। इनके उत्पादन केन्द्र कुमाऊँ भर में धारचूला, मुनस्यारी, छोरीबगड़ (मदकोट), डीडीहाट, कपकोट तथा अल्मोड़ा है। निगम अनुसूचित जनजाति के लोगों को कच्चामाल उपलब्ध करवाता है और उत्पाद तैयार करवाता है और विपणन की व्यवस्था करता है। स्वउत्पादन करने वाले बुनकरों के उत्पादों की विपणन की व्यवस्था भी करता है तथा उन्हें नयी तकनीकी जानकारी प्रदान करवाता है। इस मेले के अतिरिक्त बागेश्वर, पिथौरागढ़, नैनीताल व अल्मोड़ा शरदोत्सव में भी निगम के स्टॉल लगते है। निगम का कार्य 1980 से लगातार हो रहा है। निगम द्वारा तैयार करवायी जाने वाली वस्तुओं में – शाल, पश्मिना, थुलमा, चुटका, कारपेट, आसन, पंखी, टोपी, मफलर, टुवीड (ऊलन कोट का कपड़ा) मेले में विक्रय हेतु आती है।

इसी प्रकार जिला उद्योग केन्द्र पिथौरागढ़, उद्योग निदेशालय देहरादून तथा वस्त्र मंत्रालय भारतवर्ष के सौजन्य से सन् 2005 से हतकरघा, हस्त शिल्प प्रदर्शनी हेतु उद्यमियों को निःशुल्क स्टॉल आवंटित किये जा रहे हैं। इन उद्यमियों द्वारा मेले में लाये जोन वाले उत्पादों में– (1)करघों द्वारा निर्मित – ऊनी–सूती चादर, तौलिये, शाल व पंखी (2) दस्तकारी – दन,कालीन, चुटके जो धारचूला, मुनस्यारी, थल, डीडीहाट से आते हैं तथा (3) रिंगाल निर्मित'– टोकरियाँ, चटाई, डोके, सूपे (मुनस्यारी क्षेत्र से) प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त गृह उद्योग सहकारी समिति लि0 काशीपुर के द्वारा निर्मित चादर, तौलिया, धोती, गम्छा, दरी, रामनवमी, पिछौड़ा, स्कार्फ, ड्रेस, ड्रेस मैटीरियल इत्यादि मेले में लायी जाती हैं।

5. मेले का मनोरंजन व्यवसाय

नेपाल, तिब्बत और भारत तीन देशों का सम्मिलित मेला भारत की भूमि पर होता है।[25] जौलजीवी मेले में विभिन्न प्रकार के सांस्कृतिक कार्यक्रम भी सम्पन्न किये जाते है। नेपाली, शौका एवं कुमाऊँनी नृत्य गीतों के लिए यह मेला विशेष रूप से प्रसिद्ध है।[26] वृहद साक्षत्कार से ज्ञात हुआ कि पहले से जोहार की वादी और निराशी लोग मेले में हुड़का बजाकर नाचते थे। शादी–ब्याह में भी इनके नृत्य –गीतों का प्रचलन था। इनके स्वनिर्मित गीत मेले का विशेष आकर्षण होते थे। रात भर खेल तमाशा होता था। मेले में झोड़ा व चांचरी, छपेली लोकगीतों का आयोजन होता था झुण्ड के झुण्ड लोकगीतों को गाते हुए दिखायी देते थे। लोकगीतों को आयोजन आज भी होता है। मेले के दौरान सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन जौलजीवी मेला समिति के द्वारा किया जाता है। मेले में लोकगीतों, लोकनृत्यों के लिए सांस्कृतिक मंच बना होता है। दर्शकों के बैठने के लिए एवं वृद्ध, बुजुर्ग व महिलाओं के बैठने के लिए कुर्सियों की व्यवस्था भी रहती है जबकि नौजवान लोग खड़े–खड़े ही इन कार्यक्रमों का लुफ्त उठाते दिखायी देते हैं। मंच के माध्यम से विभिन्न स्कूली बच्चों के अभिनय का भी आयोजन किया जाता है। यही नहीं मनोरंजन के व्यवसायिक साधन भी मेले में उपलब्ध रहते हैं, जिनमें कई प्रकार के छोटे बड़े झूले, चरखे, सरकस, रंग–बिरंगे गुब्बारे तथा विभिन्न प्रकार के बच्चों के खिलौने यथा– बाँसुरी, प्लास्टिक के बंदूकें, गुड़िया, अनेक पशु–पक्षियों के खिलौने, सीटी इत्यादि प्रमुख हैं। मनोरंजन के लिये साधनों की तरफ बड़ी संख्या में बच्चों का समुदाय बरबस खींचा चला आता है। यहाँ एकत्रित भीड़ में एक प्रकार की आगे निकलने की प्रतिस्पर्धा जैसी प्रतीत होती है। कुल मिलाकर सार रूप में यह मेला अंतराष्ट्रीय ऐतिहासिक व्यापारिक संदर्भ में इस दुर्गम क्षेत्र विशेष के लिये अति महत्वपूर्ण होने के साथ–साथ तीनों देशों की सांस्कृतिक संगमन एवं मनोरंजन का भी दृढ़ केन्द्र रहा है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. वैष्णव, यमुना दत्त, 1977, कुमाऊँ का इतिहास, मॉडर्न बुक स्टोर, दि माल, नैनीताल, पृ. 23।
2. नौटियाल, शिवानन्द, 1991, कुमाऊँ दर्शन, सुलभ प्रकाशन, अशोक मार्ग, लखनऊ, पृ. 110–111।
3. सांकृत्यायन, राहुल, वि.स. 2015, कुमाऊँ, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, पृ. 144।
4. जोशी, प्रयाग, 1983, जनजाति वनराजियों की खोज में, संकलित 1 'पहाड़–1' हिमालयी समाज, संस्कृति और पर्यावरण पर 1 केन्द्रित सालान किताव 'यामा' रोहिला लॉज, नैनीताल, पृ. 52।
5. वही, पूर्वोक्त।
6. वही, पूर्वोक्त।
7. नौटियाल, शिवानन्द, पूर्वोक्त पृ. 110–111।
8. सांकृत्यायन, राहुल, पूर्वोक्त पृ. 144।
9. जोशी, प्रयाग, पूवोक्त पृ. 52।

10. दुम्कां, चन्द्रशेखर, 2003, उत्तराखण्ड इतिहास और संस्कृति, प्रकाश जोशी, घनश्याम बुक डिपो, बड़ा बाजार बरेली–3 पृ. 10।
11. नौटियाल, शिवानन्द, पूर्वोक्त।
12. वैष्णव, यमुनादत्त, पूर्वोक्त।
13. शर्मा, डी0डी0, 2007, उत्तराखण्ड के लोकोत्सव एवं पर्वोत्सव, अंकित प्रकाशन हल्द्वानी पृ. 158।
14. सांकृत्यायन, राहुल, पूर्वोक्त।
15. जोशी, प्रयाग, पूर्वोक्त।
16. दुम्कां, चन्द्रशेखर, पूर्वोक्त, जोशी, घनश्याम।
17. सांकृत्यायन, राहुल, पूर्वोक्त, पृ. 144।
18. पाण्डे, बद्रीदत्त, 1990, कुमाऊँ का इतिहास, श्री अल्मोड़ा बुक डिपों, अल्मोड़ा, पृ. 260।
19. वही, पूर्वोक्त, पृ. 21।
20. वही, पूर्वोक्त, पृ. 26।
21. मठपाल, यशोधर, 1996, समवेत, श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, मालरोड़ अल्मोड़ा, पृ. 103–104।
22. जोशी, प्रयाग, पूर्वोक्त, पृ. 49।
23. नेगी, गिरधर सिंह, 2005, कुमाऊँ की आदिवासी जनजाति, राजि जनजाति, (वनरावत) एक ऐतिहासिक अध्ययन MUHA, Vol-V पृ. 48।
24. मठपाल, यशोधर, पूर्वोक्त, पृ. 104–106।
25. सांकृत्यायन, राहुल, पूर्वोक्त, पृ. 144।
26. नौटियाल, शिवानन्द, पूर्वोक्त, पृ. 110–111।